THE ECONOMIC TIMES

Date:22-11-22

Careful With Crypto, Especially After FTX

ET Editorials

Indian startups involved in crypto asset management, bitcoin stacking and wallet management solutions have said they have systems and protocols in place to ensure no FTX-like situation arises with their users. Assuaging investor worries over transparency, reserve levels, security and internal controls is okay. But founders and boards must ensure these companies follow good governance and due diligence practices with appropriate internal checks and cross-checks, and reporting through regulatory filings. A robust risk management mechanism should be in place, especially till cryptos become a formal part of the economy.

FTX was trading with customer funds and its demise affected over 1 million users. Reportedly, it lent $8 billion worth of its customers' assets to its trading arm Alameda Research, also owned by Sam Bankman-Fried. As collateral, it accepted its own digital tokens. A run on the exchange showed the wide gap in its balance sheet. FTX has since filed for bankruptcy. Crypto exchanges must not risk leveraging any credit on investor funds. Backing customer deposits with liquid assets makes sense.

Blockchain — a distributed ledger of transactions that underpins cryptocurrencies — reduces the time and cost of cross-order transactions. RBI has repeatedly voiced concerns over private cryptos, saying they can cause financial instability. GoI has been cautious, but has sent positive signs of giving recognition to the crypto industry, putting its faith in India's startups and success in the public-partnership model and ecosystems. As the central bank digital currency takes shape, it should also help the crypto market take a proper shape. Creating awareness and putting in place an extra layer of oversight of crypto companies makes sense.

दैनिक भास्कर

Date:22-11-22

दबाव डालेंगे तो गरीब देश विद्रोह कर बैठेंगे

संपादकीय

पर्यावरण बैठक यानी सीओपी - 27 दूसरे सप्ताह में इस बात पर चिंतित है कि एक साल पहले हुई ग्लासगो बैठक में जो सहमति मीथेन को लेकर बनी थी, उस पर ज्यादा सक्रियता नहीं दिख रही है। यह सच है कि वर्तमान बैठक के शुरू होते ही यूएनईपी (संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम) ने ऐलान किया कि सैटेलाइट की मदद से संस्था अब हर देश के मीथेन स्तर के आंकड़ों की निगरानी करेगी। कार्बन डाई ऑक्साइड के बाद मीथेन दूसरी सबसे बड़ी प्रदूषक गैस है। तापमान को

वायुमंडल में रोकने में यह सीओ-2 से 80 गुना ज्यादा ताकतवर मानी जाती है। धान जैसी पानी में पैदा होने वाली फसलों के माध्यम से, खनन गतिविधियों के जरिए और पशुओं के कारण मीथेन गैस का उत्सर्जन सबसे ज्यादा होता है। अभी तक ऐसी टेक्नोलॉजी विकसित नहीं हुई है, जिससे कृषि में इस गैस के उत्सर्जन को कम किया जा सके। यही कारण है कि भारत के दीर्घकालिक (2070 तक) रणनीति मसौदे में कृषि को नहीं छुआ गया है। की स्थिति पहले ही विकासशील देशों में अच्छी नहीं है और उन पर अपनी खेती का तरीका बदलने का दबाव तभी डाला जा सकता है, जब उन्हें अतिरिक्त आर्थिक सुरक्षा दी जा सके। ग्लासगो में 130 से अधिक देशों ने वादा किया था कि 2030 तक मीथेन उत्सर्जन को कम से कम 30% कम किया जाएगा। लेकिन विकासशील देशों के लिए यह भी संभव होगा, जब नई टेक्नोलॉजी का विकास हो और विकसित देश विकासशील देशों को आर्थिक मदद दें। केवल दबाव डालने से कुछ हासिल नहीं होगा और गरीब देश विद्रोह में खड़े हो जाएंगे। अभी तक विश्व का तापमान 1.1 डिग्री बढ़ चुका है और इसमें मीथेन का योगदान करीब 30% है। बहरहाल धनी देशों ने इस बार जिम्मेदारी समझी।

Date:22-11-22

जी - 20 की अध्यक्षता में हमारे लिए अवसर

शेखर गुप्ता, (एडिटर-इन-चीफ, 'द प्रिन्ट')

बाली में जी-20 का शिखर सम्मेलन खत्म होने पर इंडोनेशिया ने समूह की अध्यक्षता का भार भारत के नरेंद्र मोदी को सौंप दिया। भारत के लिए इसका अर्थ यह होगा कि पूरे साल उसे विदेश मामलों पर उतना ध्यान देना होगा, जितना पहले नहीं दिया गया। खासकर इसलिए कि भारत दुनिया के उस हिस्से की मेजबानी करेगा, जो दुनिया की जीडीपी में 80% और विश्व व्यापार में 75% हिस्सेदारी करता है। और यह मेजबानी एक ऐसे नेता के नेतृत्व में होगी, जिसे शानदार समारोह आयोजित करना पसंद है। लालकृष्ण आडवाणी ने एक बार कहा था कि मोदी अच्छे 'इवेंट मैनेजर' हैं, और फिर ऐसा कहने की कीमत भी चुकाई। लेकिन सालभर चलने वाला प्रभावशाली प्रदर्शन कोई साधारण 'इवेंट' नहीं होगा। यह मोदी के 2024 के चुनाव अभियान को शानदार रंगत देगा। दुनिया भर के सबसे अहम चेहरे भारत पधारेंगे, मौके की तहजीब के तहत उन्हें भारत के नेता की तारीफ करनी ही पड़ेगी। सालभर में करीब 100 बैठकें होंगी और तब शिखर सम्मेलन होगा। ये बैठकें देश के अलग-अलग शहरों में की जाएंगी। 'विश्वगुरु' को बेहद तड़क-भड़क के साथ पेश किया जाएगा। इस सबको चुनाव अभियान के साथ सफाई से जोड़ दिया जाएगा। लेकिन भारत के लिए यह कूटनीतिक-रणनीतिक दृष्टि बहुत अहम है।

सोवियत साम्राज्य के काफूर होने के बाद करीब 2 साल तक अस्थिरता की वजह से जिस तरह वैश्विक शक्ति असंतुलन की स्थिति रही, आज फिर वैसी स्थिति बन गई है। इसके लिए ज्यादा जिम्मेदार तो व्लादिमीर पुतिन को माना जा सकता है, लेकिन शी जिनपिंग भी कुछ हद तक जिम्मेदार हैं।

सोवियत संघ के विघटन के बाद दुनिया करीब एक चौथाई सदी तक एकध्रुवीय व्यवस्था में रही, जब तक कि उभरते चीन ने इसे चुनौती नहीं दी। इस बदलाव को इस धारणा से मदद मिली कि अमेरिका कमजोर पड़ रहा है। पहले बराक ओबामा ने 'नेपथ्य से नेतृत्व' का विचार दिया, इसके बाद डोनाल्ड ट्रम्प ने वैश्वीकरण से कदम पीछे खींच लिए, और जो

बाइडन ने अफगानिस्तान से अपमानजनक वापसी का फैसला कर लिया। अगर 2022 के शुरू होने तक दुनिया उसी स्थिति में रहती जिस स्थिति में पहले थी, तब जी-20 को इतनी ताकत न मिलती। कुछ नाटकीय बदलावों पर नजर डालें।

अमेरिका की ताकत फिर बढ़ने लगी है। मुद्रास्फीति और दूसरी चुनौतियों के बावजूद उसकी अर्थव्यवस्था की सेहत बाकी विकसित देशों की अर्थव्यवस्था के मुकाबले बेहतर है और सुधार पर है। कबायली बगावत से लड़ाई में तालिबान से हारने के एक साल बाद वह असली मोर्चे यानी यूक्रेन में जीत दर्ज कर रहा है, जिसमें दुश्मन एक पूर्व 'सुपर पावर' है और जो नई उभरती 'सुपर पावर' चीन का सबसे मूल्यवान सहयोगी है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि वह अपनी फौज सीधे तैनात किए बिना जीत दर्ज कर रहा है। अमेरिका ने विदेश में जो लड़ाई लड़ी, उनका इतिहास देख लीजिए। जब वह किसी दूसरे की लड़ाई लड़ने के लिए सेना भेजता है, उसे हार का सामना करना पड़ता है, चाहे यह वियतनाम हो, इराक हो या मध्य पूर्व का कोई देश। जेलेंस्की के यूक्रेनियों ने बाइडन और अमेरिका पर लगे काबुल के कलंक को मिटा दिया है, भले ही वह पश्चिमी ताकतों से मिले हथियारों के बूते क्यों हो।

रूस सामरिक, कूटनीतिक, राजनीतिक स्तरों पर युद्ध हार रहा है। मुझे भारत में पुतिन के लिए व्यापक समर्थन और सोवियत संघ के लिए बचे-खुचे आकर्षण पर तरस आता है। यह इस धारणा को जन्म देता है कि युद्ध में रूस सही भूमिका में है। लेकिन अफसोस की बात है कि अपने से बेहद छोटे आकार के कमजोर दुश्मन से 9 महीने तक लड़ने के बाद पूरे 800 किमी लंबे मोर्चे से उसे पीछे हटना पड़ रहा है। मॉस्को की आंतरिक राजनीति जो भी हो, यह रूस और पुतिन को और कमजोर करेगा। भारत के लिए यह अच्छा होगा। क्योंकि रूस अगर चीन का दोस्त बन गया और पाकिस्तान को रिझाने लगा है, तो भारत भी अपने रणनीतिक विकल्प व्यापक कर रहा है।

हम भारतीयों में यह आदत है कि दूर किसी देश में लड़ाई चल रही हो, जिससे हमारा कोई लेना-देना न हो, उसमें भी हार रहे पक्ष के साथ हम दार्शनिक या दिलचस्प रूप से नैतिक आधार पर खुद को जोड़ लेते हैं। पहला जो अफगानी जिहाद हुआ उसमें हम चाहते थे कि सोवियत पक्ष जीत जाए लेकिन वह हार गया। दूसरे जिहाद में हम अमेरिकी पक्ष का जोश बढ़ा रहे थे और वह हार गया। अब मुखर जनमत, मीडिया, विदेश नीति के टीकाकारों, रणनीतिक मसलों के जानकारों में यह धारणा है कि रूस अपराजेय है। हम फिर पराजित पक्ष के साथ खड़े दिखेंगे।

लेकिन चीन इसे अलग तरह से देखता है। पुतिन की भारी भूल ने चीन की उभरती ताकत को जबर्दस्त झटका दिया है। उसे सहयोगी और एनर्जी के स्थायी स्रोत के रूप में रूस की जरूरत थी। युद्ध में हार से कमजोर पड़ते रूस ने चीन के गुब्बारे में पिन चुभो दी है। सबसे पहले तो इसने 'बीआरआई' को भारी चोट पहुंचाई है। अब जिस तरह परमाणु हथियार के इस्तेमाल की लगातार धमकी दी जा रही है, वह भी एक शर्मनाक बात है। चीन के सभी तीनों रणनीतिक सहयोगी- उत्तरी कोरिया, पाकिस्तान और रूस परमाणु हमले की धमकी देते रहना पसंद करते हैं। करीब पांच साल पहले तक आम धारणा यह थी कि उभरता चीन 2030 तक अमेरिका से आगे निकल जाएगा। लेकिन यह अनुमान सही होता नहीं दिख रहा। ऐसे में भारत का एक साल के लिए जी-20 का अध्यक्ष बनना हमारे लिए नए अवसर पैदा करेगा।

Date:22-11-22

दुनिया चलाने वाली टेक इंडस्ट्री अब एक नए दौर में

अभिजीत अय्यर मिश्रा, (सीनियर फेलो, आईपीसीएस)

जिस तरह से एलन मस्क ने ट्विटर पर टेकओवर किया है, उससे हमें पता चलता है कि दुनिया के तौर-तरीके कैसे हैं। इससे यह भी खबर मिलती है कि नियम-कायदे उस गुजरे जमाने की ओर लौट रहे हैं, जब कम्पनियां देशों को अपने इशारों पर नचाती थीं, देश कम्पनियों को नहीं । सूचना प्रौद्योगिकी ने कई चमत्कार किए हैं। उसने सूचनाओं का लोकतंत्रीकरण किया है। साथ ही प्रबंधन की पोजिशनों को भी बढ़ा दिया है। पहले मैन्युफेक्चरिंग ही इकोनॉमी का आधार हुआ करती थी और व्हाइट कॉलर व ब्लू कॉलर जॉब्स के बीच में स्पष्ट विभाजन होता था। सूचना प्रौद्योगिकी ने यह किया है कि इसने कोड लिखने वाले मेहनतकश मध्यवर्गियों को यह अहसास कराया कि वे व्हाइट कॉलर मैनेजमेंट का हिस्सा हैं। आईटी इकोनॉमी पहले तकनीक मुहैया कराती थी, अब वह सर्विस इंडस्ट्री बन गई है, लेकिन उसमें होने वाली भर्तियां तकनीक वाली दरों पर ही हैं। इससे टेक कम्पनियां नौकरशाही के नर्क में तब्दील हो रही हैं।

जरा सोचें, एलन मस्क ने कुछ ही दिनों पूर्व ट्विटर का स्वामित्व पाया है और वे अभी तक उसके 50 फीसदी से ज्यादा स्टाफ की छंटनी कर चुके हैं। इसके बावजूद आपका ट्विटर ठीक से काम कर रहा है ना? आपने आखिरी बार गूगल को कोई नई चीज करते हुए कब देखा था? जी-मेल और गूगल मैप के बाद उसने ऐसा कौन-सा प्रोडक्ट दिया है, जो डेढ़ लाख कर्मचारियों की वर्कफोर्स को न्यायोचित ठहरा सके? फेसबुक पर आपने ऐसे कौन-से अनूठे फीचर्स देख लिए, जो बताते हों कि वहां 70 हजार लोग काम करते हैं? कहीं तो कुछ गड़बड़ है। तकनीक ने तीन काम किए थे। वह उत्पादन की दरों और सटीकता को बढ़ाकर अभूतपूर्व स्तरों पर ले आई थी। उसने रोजगारों में भारी कटौती कर दी थी। और वह इनोवेशन की गति को बढ़ाकर नई प्रौद्योगिकी का पथ प्रशस्त करती थी। यही कारण है कि बीते सौ सालों में हम उससे पहले के दस हजार सालों की तुलना अधिक प्रगति कर चुके हैं। लेकिन सूचना प्रौद्योगिकी ने यह नहीं किया है, उलटे वह अपनी राह भटक गई है। आज आईफोन 14 वही करता है, जो आईफोन 1 उससे बेहतर तरीके से कर सकता था। नोकिया जैसे मार्केट लीडर्स विलुप्त हो गए हैं। जब आप एक जगह आकर रुक गए हों और इसके बावजूद एकाधिकार कायम रखना चाहते हों तो क्या करेंगे? उत्तर सरल है - आप सामाजिक और राजनीतिक नियंत्रण कायम करना चाहेंगे।

21वीं सदी में टेक कम्पनियां ठीक यही कर रही हैं। उनका फॉर्मूला ये है कि लोगों को इतना प्रभावित कर दो कि वो आपकी कही हर बात मानने लगें। उन तक पहुंचने वाली सूचनाओं को फिल्टर कर दो। वे अपने यूजर्स पर वामपंथी झुकाव वाले विचार थोपती हैं, लेकिन बोलने की आजादी से उन्हें महरूम कर देना चाहती हैं। यह दोहरा मानदंड नहीं तो क्या है ? भारत और अमेरिका में हिंसक वारदातों के दौरान लोगों को भड़काने वाले अकाउंट्स को ट्विटर ने सस्पेंड नहीं किया, लेकिन प्रेसिडेंट ट्रम्प का अकाउंट हटा दिया। यह तो साफ है कि पुराने तंत्र में जिनके न्यस्त स्वार्थ थे, वे अब बेचैन हो रहे हैं। अगर मस्क ने ट्विटर को मुनाफे की स्थिति में ला दिया तो आईटी जगत के मेहनतकशों का महिमामंडन बंद हो जाएगा। अपनी विचारधारा के साथ सुसंगत व्यक्ति को वेरीफाई करके उसे मान्यता देने के दिन लदेंगे, क्योंकि यह फर्जी डिग्री देने की तरह है। फेसबुक की खस्ता हालत देखकर देर-सबेर शेयरधारकों द्वारा पूछा ही जाएगा कि अगर मस्क हजार लोगों के साथ कम्पनी चला सकते हैं तो इतने लोगों को रखकर हमारे मुनाफे में सेंध क्यों

लगाई जा रही है ? अगर मस्क ट्विटर में सफल हुए तो यह मौजूदा यथास्थिति के लिए बड़ा खतरा होगा। भारत को भी इस पर पैनी नजर बनाए रखना चाहिए।

दैनिक जागरण

Date:22-11-22

जोखिम बढ़ाता जनसंख्या असंतुलन

ए. सूर्यप्रकाश, (लेखक लोकतांत्रिक विषयों के विशेषज्ञ एवं वरिष्ठ स्तंभकार हैं)

विश्व की जनसंख्या आठ अरब के आंकड़े को पार कर गई। संयुक्त राष्ट्र के अनुसार अगले वर्ष चीन को पछाड़कर भारत दुनिया का सबसे अधिक जनसंख्या वाला देश बन जाएगा। इसके बाद भारत की आबादी 2064 तक लगातार बढ़ती रहेगी। दुनिया की आबादी सात से आठ अरब होने में 12 वर्ष लगे और इसमें सबसे अधिक योगदान भारत का रहा। निम्न आय और निम्न मध्यम-आय वाले देशों में जनसंख्या वृद्धि का रुझान दिखा है। अगले कुछ दशकों में यह सिलसिला कायम रहने के आसार हैं। भारत के लिए इसके गहरे निहितार्थ होंगे। न केवल इस कारण कि अधिक लोगों के भोजन-पानी की व्यवस्था करनी होगी, बल्कि इसके सामाजिक एवं राजनीतिक परिणाम भी दिखेंगे, क्योंकि विभिन्न धार्मिक समुदायों में जनसंख्या वृद्धि असमान एवं असंगत है।

संयुक्त राष्ट्र की घोषणा से हफ्तों पहले राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरकार्यवाह दत्तात्रेय होसबाले ने भी इस मुद्दे पर आवाज उठाई थी, जो हिंदू मानस को लंबे समय से उद्वेलित किए हुए है। यह मुद्दा भारत में बदल रही धार्मिक जनसांख्यिकी और कुछ दशकों से हिंदू जनसंख्या में आई गिरावट से जुड़ा है। होसबाले ने कहा कि सीमा पार घुसपैठ और मतांतरण से भी जनसांख्यिकी परिवर्तित हो रही है। ऐसे में 'जनसंख्या नियंत्रण' की नीति अत्यंत आवश्यक हो गई है। उनके अनुसार सरकार ऐसी सार्वभौमिक जनसंख्या नीति बनाए, जो सभी धार्मिक समुदायों और भौगोलिक क्षेत्रों पर लागू हो। उन्होंने सख्त मतांतरण विरोधी कानून की आवश्यकता भी जताई। पिछले 50 वर्षों में जनगणना के आंकड़ों की पड़ताल करें तो स्पष्ट दिखता है कि जनसांख्यिकीय परिवर्तन की दिशा किस प्रकार हिंदुओं के प्रतिकूल है।

1961 की जनगणना में हिंदुओं की कुल हिस्सेदारी 83.40 प्रतिशत थी, जो 2011 में 79.80 प्रतिशत रह गई और जब 2021 के आंकड़े उपलब्ध होंगे तो यकीनन इसमें और गिरावट दिखेगी। दूसरी ओर 1961 में मुस्लिम 10.70 प्रतिशत थे, जो 2011 में 14.20 प्रतिशत हो गए। इन समुदायों की संख्या में परिवर्तन उनकी दशकीय वृद्धि दर में भारी अंतर के

कारण आया। पिछली जनगणना पर ही दृष्टि डालें तो उसमें दशकीय जनसंख्या वृद्धि दर का राष्ट्रीय औसत 17.70 प्रतिशत था। इस दौरान हिंदुओं, ईसाइयों, सिखों, बौद्धों और जैनियों की संबंधित वृद्धि दर जहां राष्ट्रीय औसत से काफी नीचे रही, वहीं मुस्लिम जनसंख्या में 24.60 प्रतिशत की दशकीय वृद्धि दर्ज हुई। यह तथ्य भी महत्वपूर्ण है कि 2001-11 के दौरान देश के 27 राज्यों में मुस्लिम जनसंख्या में बढ़ोतरी हुई। असम में यह 30.90 प्रतिशत से बढ़कर 34.20 प्रतिशत, केरल में 24.20 प्रतिशत से बढ़कर 26.60 प्रतिशत, उत्तराखंड में 11.90 प्रतिशत से बढ़कर 13.90 प्रतिशत और बंगाल में 25.20 प्रतिशत से बढ़कर 27.90 प्रतिशत हो गई।

होसबाले के अनुसार मतांतरण के अलावा मानव तस्करी भी अन्य राज्यों के अलावा उत्तर बिहार के कई जिलों की जनसांख्यिकी बदल रही है। उन्होंने स्मरण कराया कि अतीत के उदाहरण बताते हैं कि जनसंख्या असंतुलन से देश की भौगोलिक स्थिति पर गंभीर प्रभाव पड़ते हैं। मतांतरण को लेकर उनका संदर्भ पूर्वोत्तर में स्पष्ट रूप से दिखता है। अरुणाचल, मणिपुर और मेघालय में ईसाई आबादी में नाटकीय बढ़ोतरी इसकी पुष्टि करती है। कई राज्यों की जनसंख्या में अप्रत्याशित परिवर्तन के पीछे मतांतरण जिम्मेदार है। जैसे 1951 तक नगालैंड की आबादी में ईसाइयों की संख्या 52.98 प्रतिशत थी, जो 60 वर्षों में बढ़कर 90 प्रतिशत से अधिक हो गई है। वहीं 1981 तक राज्य में हिंदुओं की आबादी 14.36 प्रतिशत हुआ करती थी, जो 2001 में घटकर 7.70 प्रतिशत रह गई।

संघ नेताओं की यह चिंता निराधार नहीं है। एपी जोशी, एमडी श्रीनिवास और जेके बजाज ने 'भारत में धार्मिक जनसंख्या' शीर्षक से एक शोध किया है। इसमें 2002 के आंकड़ों का विश्लेषण करने के बाद उन्होंने बड़ी डरावनी तस्वीर पेश की है। इसमें आशंका जताई गई है कि भारतीय धर्मों के अनुयायी अल्पसंख्यक हो सकते हैं। यह अध्ययन हिंदू समूहों के लिए चेत जाने का संकेत करता है कि वे जनसंख्या नीति के लिए दबाव बनाएं, ताकि देश में सभी धार्मिक समूहों की एकसमान दशकीय जनसंख्या वृद्धि सुनिश्चित हो और हिंदुओं की आबादी में उत्तरोत्तर गिरावट न आए। कहने की आवश्यकता नहीं है कि जनसांख्यिकी में भारी परिवर्तन के गहन राजनीतिक, भौगोलिक एवं सामाजिक निहितार्थ होते हैं। कोई यह भुलाए भी नहीं भूल सकता कि 1947 में धार्मिक आधार पर हुए देश के भयावह विभाजन में कितनी हिंसा और रक्तपात हुआ था। कहते हैं कि जनता की स्मृति क्षणिक होती है, पर विभाजन की यादें अभी भी भारतीयों के जेहन में ताजा हैं।

मिजोरम, नगालैंड, मेघालय, अरुणाचल, मणिपुर, पंजाब, जम्मू-कश्मीर और लक्षद्वीप में हिंदू अल्पसंख्यक हो गए हैं। यानी देश के करीब एक चौथाई राज्यों में हिंदू अल्पसंख्यक हैं। इसके क्या राजनीतिक एवं सामाजिक निहितार्थ हैं और इससे राष्ट्रीय सुरक्षा, आंतरिक सुरक्षा और सामाजिक सौहार्द कैसे प्रभावित होंगे? इन प्रश्नों पर आत्ममंथन और चर्चा की आवश्यकता महसूस होती है। ये सवाल संघ नेतृत्व की चिंता के मूल में भी हैं। अब गेंद मोदी सरकार के पाले में है कि वह इस मुद्दे का संज्ञान लेकर आवश्यक नीतिगत पहल करे। हालांकि इसके कुछ राजनीतिक जोखिम भी दिखते हैं, क्योंकि कांग्रेस ने 1975-77 के दौरान जनसंख्या नियंत्रण को लेकर जो आक्रामक अभियान चलाया था, वह इतना अलोकप्रिय रहा कि भविष्य की सरकारें इससे किनारा करती रहीं। मोदी सरकार को इससे बचते हुए ऐसी जनसंख्या नीति पर आगे बढ़ना चाहिए, जो लोगों को समझाकर प्रेरित करे न कि ऐसी नीति जो किसी भी तरह जनसंख्या घटाने वाले तानाशाही रवैये से लैस हो। साथ ही सरकार को यह भी सुनिश्चित करना होगा कि यह नीति सभी धार्मिक समूहों पर समान रूप से लागू होगी। अब देखना होगा कि जनसांख्यिकीय वास्तविकताओं और संघ की चिंताओं के प्रति केंद्र सरकार कैसे प्रतिक्रिया देगी? क्या मोदी सरकार इस चुनौती को स्वीकार करेगी?

जनसत्ता

Date:22-11-22

अहम पहल

संपादकीय

दुनिया भर में जलवायु परिवर्तन की वजह से कैसी समस्याएं खड़ी हो रही हैं, इसके क्या कारण हैं, इसमें किसकी कितनी भूमिका है और इसका खमियाजा किसे उठाना पड़ रहा है, ये सब जगजाहिर तथ्य रहे हैं। लेकिन सालों से इस पर चिंता जताए जाने के बीच होते आ रहे अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों में शायद ही कभी विकसित देशों ने समस्या के गहराते जाने में अपनी जिम्मेदारी स्वीकार करने का साहस दिखाया।इसके उलट जलवायु परिवर्तन या बढ़ते तापमान में कार्बन उत्सर्जन को मुख्य कारण बता कर विकासशील और गरीब देशों को कठघरे में खड़ा करने की कोशिशें जरूर की गईं। जबकि तीसरी दुनिया के देश दरअसल इस समस्या में विकसित देशों की सुविधाओं के पीड़ित रहे। अनेक मौकों पर भारत सहित दुनिया के कई देशों ने इस पहलू पर विकसित देशों का ध्यान आकर्षित करने की कोशिश की, मगर ऐसे सवालों की आमतौर पर अनदेखी की जाती रही। समर्थ देशों की ओर से अपनी जिम्मेदारी से पल्ला झाड़ने और आरोप दूसरों पर मढ़ने की यह प्रवृत्ति इस समस्या के वास्तविक और दीर्घकालिक नतीजे देने वाले समाधान का रास्ता तैयार नहीं कर सकती थी।

जाहिर है, तीसरी दुनिया के देश यह सोचने पर मजबूर हुए कि अगर वे कार्बन उत्सर्जन की समस्या के भुक्तभोगी हैं तो इसके प्रमुख जिम्मेदार देशों को अपने रवैए पर पुनर्विचार करना होगा। शायद विकासशील देशों के इसी रुख से उपजे दबाव का यह हासिल है कि इस बार मिस्र के शर्म अल शेख में रविवार को संपन्न हुए संयुक्त राष्ट्र जलवायु शिखर सम्मेलन में 'हानि एवं क्षति' समझौते पर सहमति का ऐतिहासिक फैसला सामने आया। इस समझौते के तहत विकसित देशों के कार्बन प्रदूषण से पैदा हुई मौसम संबंधी प्रतिकूल परिस्थितियों से प्रभावित गरीब देशों को मुआवजा देने के लिए एक कोष तैयार किया जाएगा। हालांकि इस 'सीओपी 27' में उम्मीद की जा रही थी कि तेल और गैस सहित सभी तरह के जीवाश्म ईंधन के इस्तेमाल को चरणबद्ध तरीके से समाप्त किए जाने की बात को भी समझौते में शामिल किया जाए। लेकिन इस पहलू पर 'सीओपी 26' में बनी सहमति की तुलना में बहुत कम प्रगति हो पाई। गौरतलब है कि तेल और गैस सहित सभी जीवाश्म ईंधनों के इस्तेमाल को धीरे-धीरे खत्म करने का प्रस्ताव भारत ने दिया था और यूरोपीय संघ सहित अमेरिका और कई विकसित एवं विकासशील देशों ने इसे समर्थन दिया था।

यह तथ्य है कि जलवायु परिवर्तन पूरी दुनिया के सामने एक बड़ी चुनौती है और भारत सहित पूरे विश्व का मकसद वायुमंडल में ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन को नियंत्रित करना है। यों कार्बन उत्सर्जन में अपनी सीमित भूमिका होने के बावजूद इसे रोकने के लिए भारत अपनी ओर से हर स्तर पर काम कर रहा है, लेकिन इस मामले में विकसित देशों में अपनी जिम्मेदारी दूसरों पर थोपने की प्रवृत्ति आम रही है। अक्सर होने वाले अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों में ये द्वंद्व सामने भी आते रहे हैं। लेकिन पिछले सम्मेलन के मुकाबले इस बार एक अहम बात यह रही कि इसमें नवीकरणीय ऊर्जा को लेकर ज्यादा सख्त भाषा दिखी और ऊर्जा माध्यमों में नए प्रयोग के साथ-साथ न्यायोचित बदलाव के सिद्धांतों को शामिल किया गया। गौरतलब है कि नुकसान और मुआवजे के हल के लिए वित्तपोषण या एक नया कोष बनाने की मांग

भारत के साथ-साथ कई विकासशील देश लंबे समय से कर रहे थे, मगर धनी देशों ने इस पर बात करना जरूरी नहीं समझा था। खासतौर पर जलवायु परिवर्तन के चलते भारी नुकसान के लिए जवाबदेही से बचने के लिए अमेरिका ने ऐसे कोष का विरोध ही किया था। लेकिन इस अंतरराष्ट्रीय जलवायु सम्मेलन में मुआवजे पर बनी सहमति को गरीब देशों की जीत के तौर पर देखा जा सकता है।

Date:22-11-22

मुक्त व्यापार समझौते की चुनौती

ब्रह्मदीप अलूने

उदारवादी पूंजीवादी देश ब्रिटेन की भारत के साथ सहयोग को उच्च स्तर पर ले जाने और उसका पसंदीदा भागीदार बनने की कोशिशें अब साकार हो सकती हैं। हाल में समूह बीस (जी-20) की शिखर बैठक के दौरान ब्रिटिश प्रधानमंत्री ऋषि सुनक और भारत के प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की मुलाकात के बाद इस बात की संभावनाएं बढ़ गई हैं कि निकट भविष्य में दोनों देशों के बीच मुक्त व्यापार समझौता अस्तित्व में आ जाएगा। दरअसल, बाली में जी-20 सम्मेलन के दौरान ऋषि सुनक ने तीन हजार भारतीयों को वीजा देने की घोषणा कर अपने सकारात्मक इरादे जाहिर कर यह संदेश देने की कोशिश की कि उनकी अर्थव्यवस्था को ब्रेक्जिट के बाद मिले झटकों से उबारने के लिए भारत एक महत्त्वपूर्ण सहयोगी बनने जा रहा है। यूरोप से दूर अपने आर्थिक भविष्य को तलाशने की ब्रिटिश कोशिशों को 2010 में ही साफ करते हुए ब्रिटेन के तत्कालीन प्रधानमंत्री डेविड केमरून ने कहा था कि भारत और ब्रिटेन के संबंध पसंदीदा भागीदारी वाले होने चाहिए। इसके पहले 2005 में दोनों के बीच निवेश को बढ़ावा देने के लिए संयुक्त आर्थिक और व्यापारिक फोरम की स्थापना हो चुकी थी। लेकिन वीजा नियमों, भारतीय समुदाय पर होने वाले नस्लीय हमलों और कश्मीर जैसे मुद्दों को लेकर ब्रिटेन की राजनीतिक नीतियों में दोहरापन समस्याओं को बढ़ाता रहा। भारत के आंतरिक मामलों पर भी लेबर पार्टी का दृष्टिकोण नकारात्मक ही रहा। इन सबके साथ पिछले कुछ वर्षों में ब्रिटिश राजनीतिक घटनाक्रम और अस्थिरता भी दोनों देशों के बीच रिश्तों में गर्माहट न आने का एक प्रमुख कारण रही।

पर अब परिस्थितियां बदली हैं। भारत और ब्रिटेन के रिश्ते पहले से अधिक मजबूत और प्रभावी बनने की ओर अग्रसर होते दिखाई दे रहे हैं। ब्रिटेन सहित यूरोपीय देशों की अर्थव्यवस्थाएं जहां सिकुड़ रही हैं, वहीं भारत की अर्थव्यवस्था लगातार बढ़ रही है। तमाम चुनौतियों के बावजूद भारत ने अपनी विकास दर की रफ्तार को बनाए रखा है। इस समय ब्रिटिश अर्थव्यवस्था अपने सबसे बुरे दौर से गुजर रही है। अमेरिकी डालर के मुकाबले ब्रिटिश पाउंड की कीमत निचले

स्तर पर है। सरकार की नई कर नीतियों से ब्रिटेन पर कर्ज बढ़ता जा रहा है, जो पहले ही बहुत है। महंगाई से आम लोगों की मुश्किलें बढ़ती जा ही हैं। लोगों की आमदनी भी घटती जा रही है। बेरोजगारी चरम पर है ही। यूरोपीय संघ में साझा हितों के चलते ब्रिटेन के नागरिक इस तरह की मंदी का शिकार पहले कभी नहीं हुए थे।

ब्रिटेन यूरोपीय संघ (ईयू) से बाहर निकलने वाला पहला देश बना और 31 जनवरी 2020 को ब्रिटेन आधिकारिक तौर पर ईयू से अलग हो गया था। ईयू से अलग होने से हुए आर्थिक नुकसान की भरपाई के लिए ब्रिटेन भारत की ओर देख रहा है जो दुनिया का सबसे बड़ा बाजार है और जहां निवेश की अपार संभावनाएं हैं। गौरतलब है कि भारत और ब्रिटेन के बीच रिश्ते तीन सौ साल से ज्यादा पुराने हैं। दोनों देशों के आपसी संबंधों को मजबूत रखने में ब्रिटेन में रहने वाले प्रवासी भारतीयों की अहम भूमिका है। ये प्रवासी भारतीय ब्रिटेन और भारत के बीच एक पुल का काम कर रहे हैं।

दूसरी ओर ब्रिटेन में भारत की भूमिका भी बेहद महत्त्वपूर्ण रही है। ब्रिटेन में विभिन्न स्तरों पर नई परियोजनाएं शुरू करने के मामले में भारत अग्रणी देशों में शुमार है। ब्रिटेन की अर्थव्यवस्था में भारत की कंपनियों की अहम भूमिका है। भारतीयों की आठ सौ से ज्यादा कंपनियों ने ब्रिटेन में एक लाख से ज्यादा लोगों को रोजगार दिया है। भारत के हजारों छात्र ब्रिटेन में पढ़ रहे हैं। ब्रिटेन के लिए शिक्षा आय बढ़ाने का बड़ा जरिया है, लेकिन उसकी सख्त वीजा नीतियों से परेशान भारतीय छात्र अब अमेरिका, आस्ट्रेलिया और जर्मनी में पढ़ाई या नौकरी के लिए जा रहे हैं।

भारत और ब्रिटेन के लिए द्विपक्षीय संबंधों को मजबूत करने के लिए 'रोडमैप 2030' को लागू करने का एक अवसर है। भारत और ब्रिटेन के बीच मुक्त व्यापार समझौते से आयात और निर्यात प्रवाह में वृद्धि, निवेश प्रवाह में वृद्धि, संसाधनों के अधिक कुशल आवंटन से उत्पादकता में वृद्धि और अंतरराष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा के लिए अधिक खुलेपन से आर्थिक विकास एवं समृद्धि में वृद्धि होने की उम्मीद है। इस समझौते से 2035 तक दोनों देशों के बीच सालाना कारोबार अट्ठाईस अरब पाउंड तक बढ़ जाएगा। भारत के साथ कारोबारी समझौता करना ब्रिटेन सरकार की सबसे महत्त्वाकांक्षी नीतियों में से एक है।

पिछले दो दशकों में ब्रिटेन और चीन के संबंध काफी मजबूत रहे। इनमें से पहले दशक को वर्ष 2015 में चीन के साथ संबंधों का स्वर्णिम दशक घोषित किया गया था। लेकिन इस समय चीन और ब्रिटेन के रिश्तों में खटास देखने को मिल रही है। खासकर ताइवान और वीगर मुसलमानों पर ब्रिटेन का रुख चीन विरोधी रहा है। पिछले वर्ष चीन ने सात ब्रिटिश सांसदों पर यात्रा प्रतिबंध लगा दिए थे और उनकी संपत्ति जब्त कर ली थी। चीन का कहना था कि ये सांसद वीगर मुसलमानों के साथ बर्ताव को लेकर झूठ और दुष्प्रचार फैला रहे थे। बाद में ब्रिटेन में चीनी राजदूत को ब्रिटिश संसद में एक कार्यक्रम में बोलने से रोक दिया गया था। इस कार्यक्रम की मेजबानी में ब्रिटेन के कई दलों के सांसद शामिल थे। जाहिर है, चीन से नाराज ब्रिटेन के भारत से रक्षा संबंध भी मजबूत हो सकते हैं। भारत हिंद-प्रशांत क्षेत्र में बाजार हिस्सेदारी और रक्षा दोनों ही क्षेत्रों में ब्रिटेन के लिए एक प्रमुख रणनीतिक भागीदार है। हिंद प्रशांत में ब्रिटेन एक क्षेत्रीय शक्ति है और उसके पास ओमान, सिंगापुर, बहरीन, केन्या और ब्रिटिश हिंद महासागर क्षेत्र में नौसैनिक सुविधाएं हैं। चीन की समुद्र में आक्रामक नीति से निपटने के लिए भारत और ब्रिटेन के बीच रणनीतिक सहयोग देश की सामरिक सुरक्षा के लिए महत्त्वपूर्ण हो सकता है।

रक्षा क्षेत्र में भारत के आत्मनिर्भरता अभियान में भी ब्रिटेन से तालमेल उपयोगी हो सकता है। भारत को चाहिए कि ब्रिटेन से वह जैव प्रौद्योगिकी में नई खोजों के क्षेत्र में सहयोग के करार करे। इस क्षेत्र में ब्रिटेन काफी आगे है। भारत के

सामने चुनौती है कि ब्रिटेन जैसे देशों को अंतरराष्ट्रीय मामलों में अपनी नीति के निकट लाए। भारत चाहता है कि ब्रिटेन संयुक्त राष्ट्र और दूसरे बहुराष्ट्रीय संस्थानों में भारत का साथ दे। यहीं नहीं, भारतीयों के लिए वीजा सुविधाएं आसान करने की भी अपेक्षा भारत करता रहा है। भारत के व्यवसायी ब्रिटेन में रह कर ही यूरोप में कारोबार करते है। भारत चाहता है कि भारतीयों के पास ब्रिटेन में काम करने और वहां रहने के अधिक से अधिक अवसर हों। ब्रिटेन के साथ किसी भी तरह के कारोबारी समझौते में भारत की प्राथमिकता भारतीय छात्रों और पेशेवरों के लिए वीजा नियमों में राहत हासिल करना रही है।

ब्रिटेन से मजबूत रिश्तों का लाभ भारत को कई स्तरों पर मिल सकता है। मुक्त व्यापार समझौते से दोनों देशों के बीच वस्तुओं और सेवाओं के आयात और निर्यात में रुकावटों को कम किया जा सकेगा। इस समझौते के तहत वस्तुओं और सेवाओं को अंतरराष्ट्रीय सीमाओं के पार खरीदा और बेचा जा सकता है, जिसके लिए बहुत कम सरकारी शुल्क, कोटा और सरकारी अनुदान जैसे प्रावधान किए जाते हैं। लेकिन ब्रिटेन की राजनीतिक अस्थिरता कब करवट ले ले, यह कहा नहीं जा सकता। अब यह देखना दिलचस्प होगा कि ब्रिटेन की मुक्त व्यापार समझौते की उच्च आकांक्षा और भारत में संरक्षणवादी बाजार व्यवस्था के भ्रम के बीच दोनों देश कैसे पसंदीदा भागीदार के रूप में आगे बढ़ेंगे।

राष्ट्रीय सहारा

Date:22-11-22

जलवायु न्याय की दिशा में

संपादकीय

जलवायु न्याय के मुद्दे पर इसे बहुत बड़ी कामयाबी माना जा सकता है। हालांकि इस काम में विलंब तो बहुत हुआ लेकिन जो हुआ वह अच्छा ही हुआ है। 27 वें जलवायु सम्मेलन से विकासशील और गरीब देशों को बहुत अच्छी खबर मिली है। जलवायु परिवर्तन की सबसे ज्यादा मार झेल रहे ये सभी देश शर्म अल शेख से अच्छी खबर लेकर लौटे हैं। यद्यपि कार्बन उत्सर्जन के मोर्चे पर बहुत से देशों को निराशा हाथ लगी है। रविवार को 'लॉस एंड डैमेज' डील पर अमीर देश सहमत हो ही गए। काफी समय से विकासशील और गरीब देश मांग कर रहे थे कि उन्हें जलवायु परिवर्तन की वजह से होने वाले नुकसान की भरपाई की जाए। कार्बन उत्सर्जन के लिए सबसे ज्यादा जिम्मेदार अमीर देशों को यह मदद मुहैया करानी है। अमीर देश 2009 में पेरिस में इस पर सहमत भी हो गए थे। लेकिन जल्द ही वे इससे मुकरते दिखे। तब से ही इस मुद्दे पर इतने मतभेद थे कि सम्मेलन को एक दिन आगे बढ़ाना पड़ा। बड़ी मुश्किल से तब जाकर 'लॉस एंड डैमेज' फंड बनाने पर सहमति बनी। पृथ्वी के तापमान में होने वाली वृद्धि को डेढ़ डिग्री सेल्सियस की सीमा में रखने की उम्मीदों को भी जिंदा रखा गया है लेकिन उत्सर्जन में कटौती के नए लक्ष्य तय नहीं किए गए और न ही जीवाश्म ईंधनों को नियंत्रित करने पर कोई नया समझौता हुआ। कह सकते हैं कि जलवायु सम्मेलन का जो नतीजा निकला है,उससें आशा भी झलकती है और हताशा भी। इसे दशकों पुराने संघर्ष में पहला सकारात्मक 'मील का पत्थर' कह सकते हैं। जलवायु परिवर्तन का खतरा झेल रहे 55 देशों की तरफ से पेश एक रिपोर्ट में कहा गया कि बीते दो दशक में

तापमान परिवर्तन की वजह से उन्हें लगभग 525 अरब ड़ॉलर का नुकसान हो चुका है। कुछ अनुसंधानकर्ताओं का अनुमान है कि 2030 तक यह नुकसान 580 अरब डॉलर प्रति वर्ष हो सकता है। अमेरिका और यूरोपीय संघ 'लॉस एंड डैमेज' के मुद्दे पर आपत्ति जता रहे थे उन्हें शंका थी कि इससे तो देनदारियां बढ़ती ही जायेंगी। हालांकि शर्म अल शेख के जलवायु सम्मेलन में उन्होंने अपना रुख बदल लिया। अमीर देश चीन को भी कार्बन उत्सर्जन के जिम्मेदार देशों में की सूची में ड़ालना चाहते थे,लेकिन चीन इन ताकतवर और अमीर देशों की चालों में नहीं फंसा। जलवायु न्याय हासिल करने में भारत और ब्राजील की बड़ी भूमिका रही है |

Live हिन्दुस्तान .com

Date:22-11-22

ईरान में चिंता

संपादकीय

जब इंसान एक दूसरे की कद्र नहीं करते, एक-दूसरे को मिटाने में लगे नजर आते हैं, तब दुनिया में इंसानियत न सिर्फ शर्मसार होती है, बल्कि ज्ञान-विज्ञान की तमाम नई पुरानी परंपराओं को भी चुनौती मिलती है। इन दिनों ईरान से जो खबरें आ रही हैं, उन पर पूरी दुनिया को गौर करना चाहिए। वहां के एक मानवाधिकार समूह ने दावा किया है कि ईरानी सुरक्षा बलों ने महसा अमीनी की मौत के बाद भड़के विरोध प्रदर्शनों में 47 बच्चों सहित कम से कम 378 लोगों की हत्या कर दी है। गौरतलब है कि ईरान में महिलाओं के लिए सख्त ड्रेस कोड लागू किया गया है। और इसके बहुत मामूली कथित उल्लंघन पर महसा अमौनी को गिरफ्तार किया गया था। 16 सितंबर को अमीनी की मौत के बाद देश भर में भड़के विरोध प्रदर्शनों को दबाने के लिए ईरान के शासन- प्रशासन ने पूरी निर्ममता का सहारा लिया है, नतीजा सामने है। इन घटनाओं के कारण इस्लामी गणराज्य ईरान की दुनिया में भारी बदनामी हो रही है। क्या यह देश इस समस्या के समाधान के लिए पूरी संवेदना बरतने में सक्षम नहीं था ?

1979 की क्रांति के बाद से ईरान जिस दिशा में बढ़ रहा है, उसमें विशेष रूप से महिलाओं पर कानून कड़ाई से लागू किए जा रहे हैं। बेशक, हर देश का अपना कानून होता है और कानून के तहत कड़ाई की भी गुंजाइश होती है, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि विरोध प्रदर्शनों को कुचलने के लिए बच्चों की भी हत्या होने लगे। ईरान के मानवाधिकार निदेशक महमूद अमीरी- मोगद्दम के अनुसार, मरने वाली महिलाओं और बच्चों की तादाद ज्यादा भी हो सकती है। न्याय के शासन और आम लोगों के दमन में फर्क है। दुनिया में कोई ऐसा मजहब नहीं है, जो दमन की पैरवी करता हो। किसी भी प्रकार के दमन से समाज और देश को नुकसान ही होता है। ईरान के शासन-प्रशासन को पूरी जवाबदेही का परिचय देना चाहिए। दुनिया को दिखाने के लिए नॉन-स्टेट तत्वों या आतंकवादियों को जिम्मेदार ठहरा देने का तरीका पुराना है। पाकिस्तान भी ऐसा करता था, पर आज उसकी आर्थिक-सामाजिक स्थिति में जो गिरावट हुई है, वह सुबूत है कि शासन-प्रशासन लगातार दमन करे, तो कोई देश ज्यादा समय तक अपने मान-सम्मान को बचाए नहीं रख सकता।

अच्छी संस्कृति का जन्म व संचालन दमन से नहीं, अच्छी नीतियों व सहज प्रेरणाओं से होता है। एक समय ईरान एशिया में गौरवशाली राष्ट्र हुआ करता था, पर आज वह भटकता लग रहा है।

अगर मानवाधिकार कार्यकर्ता संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार परिषद में इस मामले को उठाना चाहते हैं, तो ईरान को अपने माकूल जवाब के साथ पेश आना चाहिए। हो सकता है, ईरान के वर्तमान शासन- प्रशासन के खिलाफ दुष्प्रचार हो रहा हो। दुनिया को भी पता चलना चाहिए कि क्या औरतों और बच्चों की ईरान में हत्या हो रही है ? ईरान जांच के लिए तैयार नहीं होगा, लेकिन उसे सुधार और अपनी छवि को खराब होने से जरूर बचाना चाहिए। यहां सवाल सिर्फ ईरान का नहीं है, मजहब का महज नाम लेने वाले, लेकिन मजहब की उदारता, संवेदना, सरलता का प्रमाण न देने वालों की जगह सभ्य विश्व में नहीं है। जिसमें ममता नहीं, जिसमें इंसानियत नहीं, जो दमन को बुरा नहीं मानता, ऐसे लोगों और देशों का चेहरा सबके सामने आना चाहिए। अगर दुनिया में कहीं भी ऐसा दमन हो रहा है, तो यह संयुक्त राष्ट्र और कथित उदार देशों की उपस्थिति व उपयोगिता पर भी सवाल है।

Date:22-11-22

जलवायु पर बनी कुछ सहमति, पर आगे राह आसान नहीं

अनिल प्रकाश जोशी, (पर्यावरणविद)

जलवायु बचाव पर केंद्रित एक और विश्व सम्मेलन संपन्न हो गया। मिस्र के शर्म अल-शेख में आयोजित कॉप - 27 एक ऐसे ऐतिहासिक करार पर पहुंचा है, जिससे उम्मीदें बढ़ गई हैं। इसमें 200 से ज्यादा देश जुटे थे। पिछली बार ऐसा ही सम्मेलन ग्लास्गो में संपन्न हुआ था, पर ताजा सम्मेलन ज्यादा बेहतर रहा है। पुराने अनुभवों और लगातार चल रही बहसों को मिलाकर एक बात यह सामने आती है कि इस तरह के सम्मेलन विभिन्न देशों के बीच सहयोग के बजाय विभिन्न देशों के बीच संघर्ष या मतभेद में बदल जाते है। साफ तौर पर दुनिया दो पक्षों में दिखाई देने लगती है, एक ओर जहां विकसित देश हैं, वहीं दूसरी ओर गरीब और विकासशील देश खड़े नजर आते हैं। सब अपने-अपने विकास के लिए चिंतित हैं और चिंता का मुख्य मुद्दा बन जाता है कार्बन डाई ऑक्साइड या कार्बन उत्सर्जन इस बार भी सम्मेलन में वही सब कुछ हुआ है, जैसा हमने पहले देखा है, परस्पर खींचतान की स्थिति ही ज्यादातर समय बनी रही।

यह खींचतान इसलिए भी बनी रहती है, क्योंकि कुछ विकसित देशों को जिम्मेदार ठहराने की कोशिश होती है। इस बार भी ऐसे 20 देश चिह्नित किए गए हैं, जिनसे कार्बन उत्सर्जन ज्यादा हो रहा है, जिसमें अपना देश भी शामिल है। इस तरह के सम्मेलन में मुद्दों को उठाने के तौर-तरीकों में शायद हम एक बेहतर पहल नहीं कर पाते हैं। उदाहरण के लिए, विकसित देशों ने अगर अपने हिस्से का विकास कर लिया हो, जहां जीवन स्तर ऊंचे दर्जे का हो गया हो, तो स्वतः उनको अपनी सीमाएं तय कर लेनी चाहिए। इसके समानांतर जो विकासशील या गरीब देश हैं, उन्हें कोई भी ऊर्जा का स्रोत उपयोग में लाने की मंजूरी देनी चाहिए, ताकि वहां भी लोग औसत जीवन स्तर तक पहुंच जाएं।

अगर यह मानकर चला जाए कि दुनिया में सबसे बेहतर जीवन स्तर किसका है, तो उसमें अमेरिका आता है और वही सबसे बड़ा कार्बन उत्सर्जक भी है। उसी तरह अब जब दुनिया के बहुत से देश जैसे चीन, जो अपनी प्रगति के लिए देश-

दुनिया में जाना जाता है, और उसकी जीडीपी सबको पीछे छोड़ती दिखाई देती है, वह भी कार्बन उत्सर्जन में बहुत आगे है। चीन कार्बन उत्सर्जन में अमेरिका के बाद दूसरे स्थान पर आता है।

दुनिया की 43 प्रतिशत आबादी बड़े पैमाने पर जलवायु परिवर्तन से प्रभावित होने वाली है या हो चुकी है। यह माना गया है कि जलवायु परिवर्तन के कारण दुनिया की अर्थव्यवस्थाओं को 1.6 अरब डॉलर का नुकसान हो चुका है। हर बार हम साथ बैठते हैं, समितियां बनाई जाती हैं, इस बार भी 23 देशों की समिति बनी है। यह समिति विभिन्न पक्षों से बात करने के बाद जलवायु कोश बनाने की सिफारिश करेगी । जलवायु कोश की मांग लंबे समय से उठती आ रही है। पहले जब यह बात हुई थी, अमेरिका और ब्राजील पीछे हट गए थे। इस प्रस्ताव से अभी भी अनेक देश सहमत नहीं हैं, तो आगे भी इस कोश की राह आसान नहीं होगी। विकसित देशों की कथनी-करनी में अंतर है। यहां सवाल है कि हम इस तरह के विवादों में पड़ते हुए कब तक समय खराब करेंगे ? समझ लेना चाहिए कि पृथ्वी का तापमान अगर ऐसे ही बढ़ता रहा, तो मुश्किलें खड़ी हो जाएंगी और आने वाले सात-आठ दशक में दुनिया रहने लायक नहीं रह जाएगी। तब न कोई कॉप हमारे काम आएगा और न कोई पहल। सब देशों को मिलकर सोचना चाहिए कि हर देश अपने स्तर पर क्या कदम उठा सकता है। अगर हम सामूहिक रूप से नहीं सोच पा रहे हैं, तो हमें अलग-अलग भी सोचना चाहिए।

दिल्ली की खराब आबोहवा के लिए हम अमेरिका या मिस्र को कैसे दोषी ठहरा सकते हैं? स्थानीय गतिविधियां ज्यादा दोषी होती हैं। अभी हमारे देश में वायु प्रदूषण अपनी चरम सीमा पर है। हमारे शहर बहुत गंभीर हालात में पहुंच चुके हैं। हमें जलवायु सुधार पर केंद्रित गोष्ठियों के भरोसे ही नहीं रहना चाहिए, अपने आस- पास सुधार के छोटे-बड़े प्रयास युद्ध स्तर पर जारी रखने चाहिए। कड़े और बड़े कदम उठाना जरूरी है। यदि हम अपने स्तर पर प्रयास करें, तो जलवायु से होने वाले नुकसान को 60 प्रतिशत तक सीमित कर सकते हैं। क्या भारत स्थानीय स्तर पर पहल करेगा और फिर अगले जलवायु सम्मेलन में दुनिया को रास्ता दिखाएगा ?